

---

 प्रवचन-1, गाथा-6
 

---

यह 'समयसार' एक सिद्धान्त है। इसकी रचना दो हजार वर्ष पहले 'कुन्दकुन्दाचार्य' ने की है। ये कुन्दकुन्दाचार्य, महाविदेह में गये थे, वहाँ आठ दिन रहे थे, वहाँ साक्षात् भगवान विराजते हैं, 'सीमन्धर भगवान' ! उनको सुनकर और (वहाँ से) आकर यह शास्त्र रचा है; इसलिए यह वीतराग की ही वाणी है। आहा... ! सूक्ष्म पड़ती है (परन्तु) अपूर्व बात है ! अनन्त काल में उसने आत्मा शुद्ध चैतन्य क्या है ? उसकी इसे खबर नहीं है।

अपने यहाँ (छठी गाथा का) भावार्थ (लेते हैं)। यह आत्मा वस्तु है, यह तो निर्मल (है)। जिस प्रकार पानी शीतल है अथवा जिस प्रकार स्फटिकमणि ! स्फटिकमणि स्वच्छ है। हमने तो स्फटिकमणि देखा है। इतना स्फटिकमणि देखा है, 'जामनगर' में ! इतना बड़ा स्फटिकमणि ! सफेद महाकीमती ! 06 लाख रुपये में। वहाँ एक सोलेरियम है; उसमें इतना (स्फटिक देखा है)। वह सफेद स्फटिक होता है। इसी प्रकार आत्मा सफेद अर्थात् शुद्ध निर्मल आनन्दकन्द है। परन्तु जिस प्रकार उस स्फटिक के लाल, पीला और काले फूल का संयोग होने पर अन्दर लाल, पीली, काली झाँई दिखती है, वह स्फटिक की उपाधि है; वह स्फटिक का स्वरूप नहीं है। न्याय समझ में आता है ? हमने तो सब देखा है। इतना बड़ा स्फटिक ! छह लाख का एक। 'जामनगर' में सोलेरियम है। बड़ा डाक्टर (था)। यहाँ तो यह सब डाक्टर और राजा और सब (हमें तो) सुनने आते हैं। रंक और राजा – सभी सुनने आते हैं। बड़ा डाक्टर ! उसका उस समय ढाई हजार का मासिक वेतन था। वह कितने वर्ष पहले की बात..... वहाँ पहले स्फटिक देखा था, सफेद ! सफेद !

‘जैसे निर्मलता है स्फटिक की,  
जैसे निर्मलता है स्फटिक की,  
वैसे ही जीव स्वभाव रे,  
श्री जिन वीर ने धर्म प्रकाशा,  
श्री जिन वीर ने धर्म प्रकाशा,  
प्रबल कषाय का अभाव रे।’

जैसे, स्फटिकमणि में जो लाल और पीली झाँई दिखायी देती है, वह स्फटिकमणि में उपाधि है, वह स्फटिकमणि का स्वरूप नहीं है; इसी प्रकार भगवान आत्मा, देह में भिन्न चैतन्यमूर्ति विराजमान है। वह स्वयं शुद्ध और पवित्र है परन्तु जैसे स्फटिक को लाल, पीला (फूल के) संयोग से लाल, पीला झाँई दिखायी देती है; इसी प्रकार 'अशुद्धता परद्रव्य के संयोग से आती है।' भावार्थ! पहली पंक्ति का अर्थ! आहा...हा...! भगवान तो स्फटिकमणि जैसा शुद्ध चैतन्यघन है। इसने कभी सुना नहीं। यह अन्दर चैतन्य प्रभु क्या है? जैसे स्फटिकमणि है, वैसे ही स्फटिकमणि जैसा चैतन्य आनन्दकन्द प्रभु है, परन्तु उसे जैसे लाल, पीले फूल के संयोग से झाँई दिखायी देती है, ऐसे यह भगवान आत्मा शुद्ध, निर्मल, आनन्दकन्द हैं।

अशुद्धता, परद्रव्य के संयोग में आती है। जिस प्रकार फूल के संयोग के कारण स्फटिक में लाल, पीला दिखायी देता है; इसी प्रकार कर्म के निमित्त से आत्मा में पुण्य और पाप के, दया और दान के, व्रत और भक्ति के, काम और क्रोध के विकारीभाव (होते हैं)। यह अशुद्धता, परद्रव्य के संयोग से-सम्बन्ध से आती है। सूक्ष्म बात है, भगवान!

है पहला शब्द? अशुद्धता परद्रव्य के संयोग से आती है। जिस प्रकार स्फटिक में परद्रव्य के संयोग से लाल, पीली झाँई दिखायी देती है; इसी प्रकार भगवान आत्मा चैतन्य प्रकाश के नूर का पूर – तेज का पूर अन्दर है! अरे...! कैसे बैठे? अन्दर में भगवान आत्मा चैतन्य के नूर का-तेज का पूर है परन्तु उसकी पवित्रता भूलकर, अनादि से पर्याय में अशुद्धता, परद्रव्य के संयोग से आती है। समझ में आता है इसमें? उसका यह स्वभाव नहीं! परन्तु परद्रव्य के संयोग से अनादि से इसमें मलिनता (अर्थात्) पुण्य और पाप (के भाव) और मिथ्या भ्रान्ति (अर्थात्) पर में सुख है, पर के कारण मुझे मजा आता है – ऐसी यह मूढ़ता, मूर्खता, यह अशुद्धता, परद्रव्य के संयोग के सम्बन्ध से जानने में आती है।

...मूल द्रव्य तो... है? जो मूल वस्तु है, वह तो स्फटिकमणि जैसी (शुद्ध है)। '...(मूल) द्रव्य तो अन्य द्रव्यरूप होता ही नहीं...' यह वस्तु स्वयं है, वह किसी अन्यरूप होती नहीं। इसकी पर्याय में-अवस्था में विकारपना जानने में आता है, वह कर्म के निमित्त की उपाधि है, उसका स्वभाव नहीं। आहा...हा...! यह (मूल द्रव्य) अन्य

द्रव्यरूप नहीं होता। स्वद्रव्य चेतन, स्फटिकमणि जैसा आत्मा-भगवान, वह अन्य द्रव्यरूप या रागरूप यह आत्मा स्वयं नहीं होता – द्रव्य नहीं होता। ....**मात्र परद्रव्य के निमित्त से अवस्था...** सूक्ष्म बात है, भगवान! परद्रव्य के निमित्त से, हों! परद्रव्य के कारण नहीं। परद्रव्य के कारण आत्मा में विकार नहीं; विकार तो जीव स्वयं को भूलकर... 'अपने को आप भूलकर हैरान हो गया!' स्वयं स्वयं को भूलकर, सच्चिदानन्द प्रभु! उसको भूलकर पर्याय में पर के निमित्त से अवस्था मलिन हो जाती है।

**द्रव्यदृष्टि से तो...** परन्तु यदि वस्तुदृष्टि से देखें तो ...**द्रव्य जो है, वह ही है...** स्फटिकमणि की तरह यह चैतन्यमूर्ति का रत्न आनन्दकन्द ही है। यह तो पर्याय में पर के निमित्त से उपाधि दिखायी देती है। समझ में आता है... भाई? सूक्ष्म बात है, प्रभु! तेरी बात ही बड़ी है, प्रभु! अन्दर बड़ा भगवान है, परमात्मा है! अरे...! आ...हा... हा...! यह 38 गाथा में आता है, नहीं? 38 गाथा में! अपने परमेश्वर को भूल गया है। 38 गाथा है, इसकी (समयसार की) 38 (गाथा)। पीछे आता है न। है इसमें? इसमें आता है इसमें मेरे पास आना चाहिए न! 38 में है। देखो! ...**अपने परमेश्वर (सर्व सामर्थ्य के धारक) आत्मा को भूल गया था...** है इसमें? पाँचवीं-छठी लाईन। है इसमें? पाँचवीं-छठी लाईन! अपने परमेश्वर को भूल गया था। आहा...हा...हा...! स्वयं परमेश्वर है, प्रभु! परन्तु तुझे नहीं बैठता (क्योंकि) अनादि काल से रंकपना भासित है न! अपने परमेश्वर को भूल गया! अपने परमेश्वर को भूल गया!! है न इसमें?

परमेश्वर स्वयं (अर्थात्) परम-ईश्वर! अनन्त-अनन्त गुण (हैं), इसमें एक 'प्रभुता' नाम का गुण है। थोड़ी बात होती है, भाई! थोड़ी-थोड़ी... बहुत सूक्ष्म बात यहाँ पकड़ में नहीं आती। यह प्रभुता नाम का एक गुण है, यह ईश्वर है। ऐसा प्रभुत्व गुण जो है, ऐसे आत्मा में अनन्त गुण हैं। उसमें एक 'प्रभुत्व' नाम का गुण है कि जिस गुण के कारण अनन्त गुणों में ईश्वरता और प्रभुता आयी है।

यह क्या कहा? आत्मा में संख्या से अनन्त-अनन्त गुण हैं, उसमें एक प्रभुत्व नाम का गुण है। जैसे, ज्ञानगुण है-जानना, देखना, आनन्द (है), ऐसे ही प्रभुता नाम का – ईश्वर नाम का एक गुण-शक्ति है। आत्मा में ईश्वर नाम की एक शक्ति है – स्वभाव है –

सामर्थ्य है। वह ईश्वर नाम की शक्ति से अनन्त गुण को प्रभुत्वरूप से देखती है। अनन्त गुणों में प्रभुता भरी है। आ...हा...हा...! अरे...! ऐसा आत्मा आता है ! यह परमेश्वर, अपना परमेश्वर (है), इसको भूल गया है।

यहाँ यह कहते हैं। द्रव्यदृष्टि से तो द्रव्य जो है, वह ही है... यदि वस्तु से देखो तो जो है, वही है। उसकी पर्याय में परद्रव्य के संयोग से मलिनता दिखायी देती है, वह उपाधि है। वह वस्तु की (वास्तविक) स्थिति नहीं है। ...और पर्याय (अवस्था) दृष्टि से देखा जाए तो... (अर्थात्) वर्तमान दशा-अवस्था से उसको देखें तो.... है? (देखा)जाए तो, है न? मलिन ही दिखायी देता है। वस्तु से देखो तो वह निर्मलानन्द है। पर्याय-अवस्था से देखो तो वह मलिन दिखता है। आ...हा...! यह दो इसके रूप हैं! सूक्ष्म बात है, भाई!

इस प्रकार आत्मा का स्वभाव ज्ञायकत्व मात्र है... आत्मा का स्वभाव तो जानना (है)। चैतन्यमूर्ति! चैतन्य का प्रकाश! स्पष्ट चैतन्य ज्योति, प्रत्यक्ष स्वरूप अनुभव में आये ऐसा जो स्वभाव है। द्रव्यदृष्टि से देखो तो ऐसा है। ...ज्ञायकत्व (मात्र) ही है और उसकी अवस्था पुद्गल कर्म के निमित्त से रागादिरूप मलिन है। जैसे इस स्फटिक में फूल के निमित्त से लाल, पीली झाँई दिखायी देती है, इसी प्रकार इस भगवान आत्मा में कर्म के निमित्त से, अनादि से पर की ओर के लक्ष्य से, राग और द्वेष, विकार और पुण्य और पाप की वासना दिखती है। (परन्तु) यह उसका वास्तविक स्वरूप नहीं है। पर्याय – अवस्था से देखें तो मलिन है। वस्तु से देखें तो प्रभु, परमेश्वर है। आ...हा...हा...! भगवानजीभाई! ऐसी बातें अब! इसको किस गज से माप करना? ...वह पर्याय है।

पर्यायदृष्टि से देखा जाए तो मलिन ही दिखायी देता है, और द्रव्यदृष्टि से देखने पर... वस्तु (दृष्टि से) देखा जाए ...तो ज्ञायकत्व तो ज्ञायकत्व ही है... ज्ञायक, आनन्द, वह आनन्द ही है, जाननेवाला, वह जाननेवाला ही है। जाननेवाले में कमी ... कमी, विपरीतता, न्यूनता हुई नहीं। वह तो अन्दर परिपूर्ण भगवान चैतन्य विराजमान है। आ...हा...हा...!

प्रभु! तुझे 'प्रभु' कहकर तो बुलाते हैं। तेरी प्रभुता प्रगट कराने के लिए (तुझे प्रभु कहकर बुलाते हैं)। तेरे में प्रभुता भरी है, अनन्त प्रभुता है। आ...हा...हा...! उस वस्तु से

देखो तो अनन्त प्रभुता (है), वह तेरी है। **ज्ञायकत्व...** कोई जड़रूप हुआ नहीं, जो ज्ञायक है... जाननेवाला है, वह अजाननेवाला अर्थात् पुण्य और पाप जो अजान है, उस रूप-जड़रूप ज्ञायकत्व हुआ नहीं। जाननेवाला, वह अजानरूप हुआ नहीं। अर्थात् क्या? जाननेवाला आत्मा अन्दर चैतन्यसत्ता प्रकाश की मूर्ति प्रभु (है)। इन पुण्य और पाप में चैतन्यता नहीं। चैतन्य का उनमें अभाव है, वे अचेतन है। इसमें वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श नहीं परन्तु हैं अचेतन। ज्ञायकपना, उस अचेतनरूप कभी हुआ नहीं। पर्याय में अचेतनपना दिखता है, उसकी हालत में दिखता है। वस्तु में वह है नहीं। आ...हा...हा...!

**यहाँ द्रव्यदृष्टि को प्रधान करके कहा है।** यहाँ वस्तु की मुख्यता बताने के लिए... मुख्यता बताने के लिए, प्रभु को ज्ञायकपना है – ऐसा बताया है। पर्याय में मलिनता है, उसको नहीं बताकर, उसको गौण करके, उसको गर्भित रखकर, वस्तु क्या है – वह बताया है। यह भाषा तो भाई, सादी में सादी, सादा में सादी है परन्तु भाव तो जो है, वह ऊँचा है वह है।

**...कुछ जड़पना हुआ नहीं। यह क्या कहा है? यहाँ द्रव्यदृष्टि को प्रधान करके कहा है। जो प्रमत्त-अप्रमत्त का भेद है, वह तो परद्रव्य की संयोगजनित पर्याय है।** आत्मा में चौदह गुणस्थान हैं। जिस प्रकार मंजिल चढ़ने के लिए नसैनी में चौदह सीढ़ियाँ होती हैं, उसी प्रकार आत्मा को पूर्ण पर्याय प्राप्त (करने के लिए) पूर्ण आनन्द की पर्याय-मोक्षपर्याय प्राप्त (करने के लिए) चौदह सीढ़ियाँ हैं। इस चौदह सीढ़ियों में छठवीं सीढ़ी तक को 'प्रमाद' कहते हैं और सातवीं सीढ़ी से चौदहवीं (सीढ़ी) तक 'अप्रमाद' कहते हैं। यह प्रमाद और अप्रमाद, दो भाग शुभ और अशुभ के कारण दिखते हैं। वस्तु प्रमत्त-अप्रमत्त नहीं है। अरे...! ऐसी बात है! जगत कहाँ पड़ा है और वस्तु कहाँ रह गई! आहा...हा...! **...वह तो परद्रव्य की संयोगजनित पर्याय है।** शुभ-अशुभभाव से प्रमत्त-अप्रमत्त दिखायी देता है। प्रमत्त, वह छठा गुणस्थान तक – छह सीढ़ियों तक और अप्रमत्त सातवें से चौदहवें तक, ये सभी भूमिकायें शुभ और अशुभभाव के (निमित्त से दिखायी देती है)। ज्ञायकपने की पर्याय में आने पर, उसे भेद दिखायी देते हैं; बाकी ज्ञायकपना है, वह शुभ-अशुभभावरूप हुआ नहीं; इसलिए उसको प्रमत्त और अप्रमत्त अवस्था भी हुई नहीं।

परद्रव्य के संयोगजनित पर्याय है; वह अशुद्धता द्रव्यदृष्टि में गौण है... पर्याय में मलिनता है, परन्तु द्रव्यदृष्टि से देखने पर उसे गौण करके, उसे गर्भित रखकर इसकी वस्तु में यह नहीं – ऐसा कहने में आया है। ...गौण है, व्यवहार है... आत्मा में पुण्य और पाप के परिणाम, दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम ये सब व्यवहार है; आत्मा का स्वभाव नहीं। आत्मा का स्वरूप यह नहीं। आ... हा...हा...! है? ...अभूतार्थ है... झूठा है। वस्तु का स्वभाव चैतन्य प्रकाश की मूर्ति प्रभु! इसमें पुण्य-पाप के भाव के भेद हैं, वह झूठे हैं। अन्दर सत्यस्वरूप में वे है नहीं। पर्याय में दिखायी देते हैं, वे झूठे-भ्रम हैं। आ...हा...हा...! असत्यार्थ है... है? त्रिकाल की अपेक्षा से, हों! पर्याय में है अवश्य। पर्याय / अवस्था में, पुण्य-पाप हैं, इसलिए तो इनको अपना मानकर यह भटकता है। पुण्य और पाप के भाव को अपना मानकर अनादि से भटक रहा है। यह पर्याय में है परन्तु वस्तु से देखने पर, इसमें नहीं और वस्तु को देखने की नजर इसने अनादि से सेकेण्डमात्र भी नहीं की। यह क्या चीज है अन्दर? सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ परमेश्वर, सर्वज्ञदेव, त्रिलोक प्रभु ने आत्मा को कैसा और कितना और किस प्रकार कहा है? उसकी इसे खबर नहीं। इसलिए यहाँ यह कहते हैं कि यह असत्यार्थ है। वस्तु में जो पुण्य-पाप दिखायी देते हैं, वह द्रव्य की अपेक्षा से – त्रिकाली की अपेक्षा से झूठा है। इसमें अवस्था की अपेक्षा से है, पर्याय की अपेक्षा से है। वस्तु की अपेक्षा से वह झूठा है। है? ...उपचार है। (अर्थात्) आरोप है।

द्रव्यदृष्टि शुद्ध है... परन्तु वस्तु की दृष्टि करने पर वह शुद्ध चीज आत्मा आनन्दकन्द है। जैसे, यह स्फटिक का पत्थर है, वैसे यह चैतन्य का, आनन्द का कन्द प्रभु है। आ...हा...हा...! परमेश्वर! जाति से परमेश्वरस्वरूप है परन्तु उस स्वरूप की पर्याय को भूलकर, पर्याय में राग-द्वेष करता है। यह द्रव्यदृष्टि से देखें तो अभेद है... आत्मा शुद्ध है। पुण्य और पाप के भेद में आया नहीं। अन्दर अभेद अर्थात् एकरूप है। ...निश्चय है, भूतार्थ है, सत्यार्थ है... त्रिकाली चीज सत्य (है), वह सत्य है। पर्याय (को) त्रिकाल की अपेक्षा से असत्य कहा जाता है, परन्तु पर्यायदृष्टि से पर्याय सत् है। पर्यायदृष्टि से पर्याय है। वस्तुदृष्टि से पर्याय असत्यार्थ है। आया? आहा...! निश्चय है, भूतार्थ (है) और सत्यार्थ है। सत्य वस्तु, द्रव्य ...परमार्थ है, इसलिए आत्मा ज्ञायक ही है... आ...हा...हा...!

भगवान आत्मा तो ज्ञानस्वरूप – चैतन्यचन्द्र है। जिनचन्द्र ! जिसे जिनचन्द्र कहते हैं। जिन अर्थात् वीतरागी चन्द्र। यह आत्मा जिनचन्द्र-वीतरागी चन्द्र की मूर्ति अन्दर है। आ...हा...हा... ! कभी भी सुना नहीं। इसकी तरफ गया नहीं। विचार में लिया नहीं और बाहर की धमाधम में मरकर उलझन में अनादि काल (से) चौरासी के अवतार करता है।

यहाँ यह कहते हैं, आहा... ! इसलिए आत्मा ज्ञायक ही है, उसमें भेद नहीं... वस्तु में भेद नहीं। पर्याय में राग-द्वेष के भेद हैं... ..इससे वह प्रमत्त-अप्रमत्त नहीं।

‘ज्ञायक’ ऐसा नाम भी उसे ज्ञेय को जानने से दिया जाता है... इसे जाननेवाला – ऐसा कहा जाता है तो जानने योग्य चीज को देखकर ऐसा कहा जाता है कि जानने योग्य है। फिर भी यह जाननेवाला, स्वयं पर को नहीं जानता। पर को जानने के काल में अपनी ज्ञान की दशारूप होकर इसको जानता है, पर को नहीं जानता; स्वयं को जानता है। आहा...हा... ! ऐसा सूक्ष्म बाते हैं, प्रभु ! ज्ञायकपना जानने में आता है।

...कारण कि ज्ञेय का प्रतिबिम्ब जब झलके... दर्पण में सामने चीज-बिम्ब हो, उसका प्रतिबिम्ब दिखता है। दर्पण में सामने चीज-बिम्ब हो, (उसका) प्रतिबिम्ब (पड़ता है), बिम्ब का प्रतिबिम्ब (पड़ता है)। ऐसे ही भगवान चैतन्य दर्पण, इसमें राग-द्वेष (रूप) का बिम्ब, उसका प्रतिबिम्ब अन्दर झलकता है अर्थात् जानने में आता है... जानने में आता है। यह जाननेवाला है। आहा...हा... ! बहुत सूक्ष्म है, भाई इसमें ! यहाँ तक पहुँचना इसको ! आ...हा...हा... ! वह जानने में आता है।

...कारण कि ज्ञेय का प्रतिबिम्ब जब झलकता है, तब ज्ञान में वैसा ही अनुभव होता है। ज्ञान, पर को जानने के समय स्वयं अपनेरूप परिणमता है। पर को जानने के काल में पररूप नहीं होता। आ...हा...हा... ! जैसे, यह अग्नि है तो अग्नि को जानते समय ज्ञान, अग्निरूप नहीं होता परन्तु अग्नि का जैसा स्वरूप है, वैसा यहाँ स्वयं को स्वयं से ज्ञान होता है। वह ज्ञान, अग्निरूप नहीं होता, और अग्नि के कारण उसका ज्ञान (हुआ नहीं) अग्नि का ज्ञान, अग्नि के कारण नहीं हुआ। अग्नि का ज्ञान अपने ज्ञान के स्वभाव के कारण हुआ है। आ...हा...हा... ! इतना सारा अन्तर ! निवृत्ति लेकर यह चीज कौन है और कैसी है ? (यह जानने को) निवृत्ति कहाँ ! फुरसत कहाँ !



तथापि ज्ञेयकृत अशुद्धता उसमें नहीं... भले पर को जाने। परन्तु पर को जानने के काल में स्वयं को ही जानता है। पर के कारण अशुद्धता इसमें नहीं। ...कारण कि जैसा ज्ञेय, ज्ञान में प्रतिभासित हुआ... जानने योग्य पदार्थ को ज्ञान जाने, तब इस ज्ञान को ज्ञान जानता है। पर को जानता है, यह कहना तो व्यवहार है। आ...हा...हा... ! बहुत सूक्ष्म प्रभु! दाह्यकृत और ज्ञेयकृत – ऐसी बात आयी थी न? यह वस्तु-शरीर है, वाणी है, मन है इसको जानने के समय ज्ञान उसरूप नहीं होता परन्तु जैसा पर का स्वरूप है, उसके ज्ञानरूप ज्ञान परिणमता है, वह पर के कारण नहीं। यह अपनी शक्ति से, उस ज्ञेय को जानने की शक्ति से जानता है। इसलिए उसकी वह जानने की शक्ति, जानने योग्य ज्ञेय है, उसकी की हुई नहीं है। समझ में आया कुछ? आ...हा...हा... !

वैसा ज्ञायक का ही अनुभव करने पर ज्ञायक ही है, यह जो मैं जाननेवाला हूँ, सो मैं ही हूँ... पर को जाननेवाला, वह मैं हूँ – ऐसा नहीं। अरे...रे... ! कहाँ ले जाना है इसको... ! पर का कर्ता तो नहीं परन्तु पर का जाननेवाला भी नहीं है। है? यह जो मैं जाननेवाला हूँ सो मैं ही हूँ।... मैं पर को जानता हूँ, इसलिए पररूप जानता हूँ, ऐसा नहीं। मेरे ज्ञान में ही मेरा प्रकाश (है)। 'स्व-पर प्रकाशक शक्ति हमारी, ताते वचन भेद भ्रम भारी।' स्व-पर प्रकाशक मेरी ही पर्याय में, मैं स्व और पर को मेरे कारण मेरे में जानता हूँ। पर के कारण नहीं। आहा...हा... ! पर का ज्ञान नहीं, यह स्व का ज्ञान है। यह जो दर्पण में प्रतिबिम्ब दिखता है (तो) यह परवस्तु वहाँ नहीं आयी। पर (वस्तु) आयी है वहाँ? यह तो दर्पण की अवस्था है। जो प्रतिबिम्ब दिखता है – सामने अग्नि हो और वहाँ दिखे (तो) वहाँ अन्दर में अग्नि है? यह दर्पण की ही अवस्था है। यह झलक दर्पण की अवस्था है, यह अग्नि की नहीं। इसी प्रकार ज्ञान में जो ज्ञेय जानने में आते हैं, वह ज्ञान की अवस्था है। जानने में जानने योग्य वस्तु की यह अवस्था नहीं। सूक्ष्म बात है, भाई ! तभी यहाँ तो थोड़ी-थोड़ी बात की है। हों! बहुत सूक्ष्म! बहुत आगे नहीं ले जाते! पहला-पहला है... आहा...हा... !

**मुमुक्षु :** यह छोटी बात नहीं, सूक्ष्म बात नहीं। बहुत बड़ी बात है?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** बात तो ऐसी है, बापू! परन्तु अन्दर पकड़ने में आयी नहीं है,



इसलिए बाहर से अपनी मान रहा है, अन्दर जाता नहीं परन्तु अन्दर जाने की कला की भी इसको खबर नहीं। आ...हा... हा...हा... !

यह जो मैं जाननेवाला हूँ सो मैं ही हूँ अन्य कोई नहीं – ऐसा अपने को अपना अभेदरूप अनुभव हुआ... आ...हा...हा... ! जानने की चीज को जानने के काल में जानने की चीजरूप अनुभवता नहीं परन्तु जानने की चीज को जानने के काल में जाननेवाले को अनुभवता है; पर को अनुभवता नहीं। आ...हा...हा... ! इस ज्ञान की झलक में प्रतिबिम्ब दिखता है, वह उस चीज का नहीं; यहाँ ज्ञान की दशा ऐसी है। उस ज्ञान की दशा को अनुभवता है। आ...हा...हा... ! ऐसा जब तक अन्दर में अनुभव न हो, तब तक इसको सम्यग्दर्शन और धर्म की शुरुआत नहीं होती और धर्म की शुरुआत न हो तो फिर चारित्र या व्रत (कुछ) इसको नहीं हो सकते। जहाँ एक नहीं, वहाँ बिन्दी की गिनती में क्या गिनती गिनना? आ...हा...हा... !

(ऐसा स्वयं को स्वयं का) अनुभव हुआ तब इस जाननेरूप क्रिया का कर्ता स्वयं... क्या कहते हैं? जाननेवाले (को) पर को जानने के काल में पर तरफ का ज्ञान (हुआ उस समय) स्वयं अपनेरूप हुआ। वह जानने का कार्य हुआ, वह स्वयं का कार्य है और जाननेवाला स्वयं कर्ता है। पर को जानना, वह स्वयं का जानना हुआ है। वह स्वयं का जानना, वह स्वयं का कार्य है और उसका कर्ता आत्मा है। पर को जानने का कार्य (हुआ), इसका कर्ता पर है, और यह जानने में आता है – ऐसा नहीं। आ...हा...हा... ! सूक्ष्म तो है, भाई ! किन्तु अब थोड़ा-थोड़ा (लोग पकड़ते हैं)।

**मुमुक्षु :** एक के बिना की बिन्दी किस काम की ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** बिन्दी काम की (किन्तु) बिन्दी शून्य की, शोर मचाने की है।

आ...हा...हा... ! भगवान आत्मा ! पर को जानता है – ऐसा कहना भी व्यवहार है। स्वयं की पर्याय को जानता है, इसमें वह जानने में आ जाता है। वह जाननेवाला ही जानने में आता है। जानने में आई चीज, वह जानने में नहीं आती। चीज जानने में आई, वह जाननेवाला ही जानने में आया है। सूक्ष्म बात है न, भाई ! वह स्वयं से जानता है, वह मैं हूँ, अन्य कोई नहीं। ऐसा अपने को अपना अभेदरूप अनुभव हुआ, तब इस जाननेरूप

क्रिया का कर्ता स्वयं ही है और जिसे जाना वह कर्म भी स्वयं ही है। कर्म अर्थात् कार्य। पर को जानने के काल में जो ज्ञान अपना अपने से हुआ, वह ज्ञान स्वयं का कर्ता है और उस ज्ञान का कर्ता वह आत्मा है। वह तो द्रव्य अपेक्षा कहा है। बाकी तो पर्याय कर्ता है, और पर्याय कार्य, दोनों साथ हैं। पण्डितजी! यहाँ तो वहाँ तक लिया है कि पर को जानने के काल में जानने की दशा तो आत्मा की है, इसके (पर के) कारण नहीं। यह जानने की दशा है, वह आत्मा का कार्य है और आत्मा इसका कर्ता है। ज्ञात होने योग्य वस्तु, वह उसका कार्य नहीं और उसके कारण यहाँ ज्ञात नहीं होता। जाननेवाला भगवान् चैतन्य स्व-परप्रकाशक होने से, अपनी सत्ता में, पर की अपेक्षा बिना पर के जाननेरूप परिणमता है, यह आत्मा है, वह मैं हूँ। पर को जानता हूँ, वह मैं हूँ – (ऐसा नहीं)। यह मैं नहीं। आ...हा...हा...! ऐसा है। यह गाथा ही जरा ऐसी है।

ऐसा एक ज्ञायकत्व मात्र स्वयं शुद्ध है। है न? – यह शुद्धनय का विषय है। शुद्धनय अर्थात् सम्यग्ज्ञान जो शुद्ध है, उसका यह त्रिकाली द्रव्य वह विषय-ध्येय है। वर्तमान में मलिनता है, वह कोई शुद्धनय का-शुद्धज्ञान का विषय-ध्येय नहीं, वह तो पर्यायनय का विषय है। वर्तमान अवस्था को देखनेवाले नय का विषय है। त्रिकाल को देखनेवाले नय का विषय नहीं। त्रिकाली (को) देखनेवाले (नय को) विषय से यह शुद्ध आत्मा कहने में आता है, इसमें अशुद्धता नहीं है। आहा...हा...हा...! है? ...ज्ञायकत्वमात्र स्वयं शुद्ध है। यह शुद्धनय का विषय है।

अन्य जो परसंयोगजनित भेद है... (अर्थात्) जितना राग और द्वेष और पुण्य और पाप के भेद दिखते (हैं)। ...वे सब भेदरूप अशुद्ध द्रव्यार्थिकनय के विषय हैं। अशुद्ध द्रव्यार्थिक अर्थात् पर्याय। पर्याय (का) विषय अर्थात् व्यवहार। (यह सब) व्यवहारनय का विषय है; परमार्थ का नहीं। आ...हा...हा...!

स्वयं का जो त्रिकाली स्वरूप है, उसको देखने-जानने पर, पर का जानना होता है, वह भी अपना ही स्वरूप है। पर के कारण यह जानता है और पर में जानने में आता है और पर है, इसलिए वह जानता है – ऐसा भी नहीं है। वह स्वयं ही पर को और स्व को जानने के स्वभाववाला अपना भाव, वही अपना शुद्धत्व (है) और वही अपना स्वरूप है। वह

शुद्धनय का विषय है। शुद्धनय अर्थात् द्रव्यदृष्टि। त्रिकाली द्रव्य को जाननेवाला ज्ञान, उस ज्ञान को शुद्धनय कहा जाता है। त्रिकाली द्रव्य को जाननेवाला ज्ञान, उस ज्ञान को शुद्धनय कहा जाता है। उस शुद्धनय का विषय त्रिकाली भगवान आत्मा है। आहा...! यह जब जानने में आये, तब उसको सम्यग्दर्शन होता है, तब उसको धर्म की पहली सीढ़ी होती है, तब उसे धर्म की पहली सीढ़ी हाथ आती है। आ...हा...हा...! जेठालालभाई! ऐसी बातें हैं! अन्य पर संयोगजनित भेद हैं, वे सब भेदरूप अशुद्ध-द्रव्यार्थिकनय का विषय है। अशुद्धद्रव्यार्थिकनय भी शुद्धद्रव्य की दृष्टि में पर्यायार्थिक ही है, इसलिए व्यवहारनय ही है – ऐसा आशय समझना चाहिए।

यहाँ यह भी जानना चाहिए कि जिनमत का कथन स्याद्वादरूप है, इसलिए अशुद्धनय को सर्वथा असत्यार्थ न माना जाए... आत्मा में-पर्याय में विकार होता ही नहीं... पर्याय में, हों! द्रव्य तो त्रिकाल शुद्ध है, किन्तु उसकी अवस्था में विकार है ही नहीं – ऐसा मानना, वह एकान्त है, वह यथार्थ नहीं। इसकी अवस्था में मलिनता है और मलिनता का, दुःख का वेदन है और दुःख के वेदन से चार गति में भ्रमण करता है, ये सब है। व्यवहारनय का विषय है, (परन्तु) वस्तु में वह नहीं, किन्तु वस्तु भी है और व्यवहारनय (का विषय) यह मलिनता का भाव भी है, यह भी दशा में है। आहा...हा...! है? इसलिए अशुद्धनय को सर्वथा झूठ नहीं मानना।

...क्योंकि स्याद्वाद प्रमाण से शुद्धता और अशुद्धता – दोनों वस्तु के धर्म हैं... यह क्या कहा? त्रिकाली वस्तु है – चैतन्य त्रिकाली वस्तु, वह शुद्ध है और वर्तमान पर्याय में मलिनता का दुःख है – दोनों हैं, दोनों हैं। दोनों में दुःख नहीं तो आनन्द होना चाहिए। आनन्द नहीं – ऐसा मानना झूठ है और दुःख नहीं – ऐसा मानना भी झूठा (है) अन्दर (स्वभाव में) आनन्द है; पर्याय में दुःख है। आहा...हा...!

**मुमुक्षु :** द्रव्य से पर्याय भिन्न है?

**समाधान :** भिन्न है! द्रव्य से पर्याय भिन्न है; एक हुई नहीं। एक हो जाए तो पूरा द्रव्य मलिन हो जाए। मलिन हो जाए तो द्रव्य ही नहीं रहे। द्रव्य यदि विकाररूप हो जाए तो द्रव्य / वस्तु ही नहीं रहे, आत्मा ही नहीं रहे। आहा...हा..! ऐसा समझने के लिए समय कितना

निकालना? मार्ग तो ऐसा है, प्रभु! आहा...हा...!

**मुमुक्षु** : सोनगढ़ कितने महीने रुकना पड़े, गुरुदेव?

**समाधान** : वहाँ महीने की बात नहीं। देश छोड़कर परदेश में कितने महीना-वर्ष तक रहना – ऐसा निश्चित किया है कभी? जेठालालभाई! देश छोड़कर परदेश में कितने काल रहना, यह निश्चित किया है? चाहे जितने काल रहना पड़े। वैसे आत्मा समझने के लिए चाहे जितने काल रहना पड़े। इसकी अवधि हो सकती नहीं। आ...हा...हा...!

त्रिकाली वस्तु है, वह शुद्ध है और वर्तमान पर्याय अर्थात् अवस्था, वह अशुद्ध है; दोनों उसके धर्म हैं। उसमें दोनों हैं। पर के कारण है नहीं, पर तो निमित्तमात्र है। मलिन होने की भी पर्याय में योग्यता है और निर्मलता तो त्रिकाल शुद्ध है, दोनों वस्तु है। दोनों वस्तु को ज्ञानरूप से (ज्ञान में) जानकर और पर्यायदृष्टि छोड़कर द्रव्यदृष्टि करना, इसका नाम सम्यग्दर्शन-धर्म का पहला चरण है। आहा...हा...! है? ...शुद्धता और अशुद्धता – दोनों वस्तु के धर्म हैं... वस्तु का धर्म है! ...पर्याय... राग-द्वेष पर्याय में है न? यह इसका – पर्याय का धर्म है न? धर्म अर्थात् धारण करना। पर्याय में धारण कर रखा है न? वह मलिनता यह कोई कर्म ने धारण नहीं की। राग-द्वेष की मलिनता स्वयं ने धारण कर रखी है; इसलिए यह अशुद्धता इसका स्वयं का धर्म (है)। धर्म अर्थात् धारण किया हुआ भाव और शुद्धता तो इसका त्रिकाली स्वरूप है। आहा...हा...!

**अशुद्धनय को यहाँ हेय कहा है...** अशुद्धता वस्तुधर्म है, वह तो सत्व, सत्य है। क्या कहते हैं? त्रिकाली चीज शुद्ध है, वह भी सत्य है और पर्याय में विकार है, वह भी वस्तु का सत्व है। वह वस्तु की ही पर्याय का सत्व है। त्रिकाली नहीं, परन्तु पर्याय का सत्व है। वह पर्याय का सत्व न माने और वस्तु का सत्व (ही माने तो एकान्त है) दोनों हैं – शुद्धता और अशुद्धता दोनों इसके धर्म हैं—ऐसा कहते हैं देखो। है? ...दोनों वस्तु के धर्म है। और वस्तु का धर्म वह वस्तु का सत्व है।... क्या कहा? त्रिकाली शुद्ध चैतन्य है, उसको भी जानना और वह जानकर, अशुद्धता है, वह भी ख्याल में रखना कि पर्याय में अशुद्धता है, मलिनता है; अतः मैं दुःखी हूँ। मेरी दृष्टि उसके ऊपर हो तो संसार है, किन्तु वह संसार है, भ्रम नहीं। 'ब्रह्म सत्य और जगत मिथ्या' – ऐसा नहीं। वह अशुद्धता भी पर्याय में स्वयं का

धर्म है। धर्म अर्थात् धारण की गई वस्तु। धर्म वह (सम्यग्दर्शनरूप) धर्म नहीं। वस्तु का सत्व है। क्या कहते हैं? त्रिकाली शुद्ध वस्तु, वह भी वस्तु का सत्व है और पर्याय में मलिनता होती (है), वह भी वस्तु की पर्याय का धर्म अर्थात् सत्व है। वह वस्तु का सत्व है। यह पर के कारण नहीं। समझ में आया? आहा...हा...!

**अशुद्धता परद्रव्य के संयोग से होती है, वह ही अन्तर है।** मलिनता जो आती है – पुण्य और पाप की, दया और दान की, व्रत और भक्ति, काम-क्रोध की, कमाना, भोग और विषय (वह सभी) मलिनता है तो वस्तु का पर्यायधर्म। धर्म अर्थात् वह पर्याय, आत्मा ने धारण की है; पर के कारण नहीं हुई। आहा...हा...! है? एक अन्तर कितना? कि अशुद्धता परद्रव्य के संयोग से होती (है) – इतना अन्तर है। शुद्ध है, वह तो स्वतः स्वभाव है और अशुद्धता, वह परद्रव्य के संयोग से होती है, इतना अन्तर है। बाकी है तो दोनों वस्तु के सत्व! दोनों वस्तु में रहते हैं – शुद्धता भी रही है और पर्याय में अशुद्धता भी रही है।

आ...हा...! पर्याय क्या? और द्रव्य क्या? पहले उनका थोड़ा तो ज्ञान होना चाहिए न! द्रव्य किसे कहते हैं? गुण किसे कहते हैं? पर्याय किसे कहते हैं? तब यह वस्तु समझ में आए। यहाँ तो विकार को भी वस्तु का सत्व कहा। सत् का सत्व, पर्याय का सत्व। पर्याय में है न? वस्तु में नहीं, वस्तु-वस्तुरूप से सत् है। पर्याय में मलिनता है तो मलिनतारूप से पर्यायदृष्टि से सत् है। दोनों वस्तु का सत्व है। आहा...हा...! मात्र पर के कारण-निमित्त से होती है, इतना अन्तर। निमित्त के कारण नहीं, परन्तु निमित्त (के) ऊपर लक्ष्य है और विकार होता है, इतना अन्तर। परन्तु विकार है आत्मा का सत्व। उसके सत्व में, उसकी पर्याय में, उसके पुरुषार्थ की विपरीतता से उसमें होता है। वह पर के कारण होता है, ऐसा है नहीं। आहा...हा...!

‘समयसार’ तो ऐसी चीज है...। आ...हा...हा...! थोड़ा परिचय चाहिए भाई! भगवान! यह तो अनन्त काल से भूला हुआ (है)। वह वस्तु क्या है? पर्याय क्या है? और पर्याय की अशुद्धता को निकालकर अकेली शुद्धता को सत् कहा (तो) ऐसा करके अशुद्धता नहीं – ऐसा मानना वह भी भूल है। वस्तु को सत्य कहने पर – त्रिकाली द्रव्य को सत्य कहने पर, पर्याय को असत्य कहा, वह तो त्रिकाली की अपेक्षा से कहा; बाकी पर्यायरूप से पर्याय

में मलिनता-संसार-विकार-दुःख है, वह भी जीव का सत् अर्थात् जीव की पर्याय का सत्व है। आ...हा...हा... !

कहिए भाई ! अन्दर में भी लक्ष्मी है और विकार जितना दुःख भी है, दोनों है, ऐसा कहते हैं। यह दुनिया वहाँ दुःख (का) वेदन (करती) है। आत्मा का अन्तर अनुभव बिना आनन्द की इसको गन्ध नहीं। पूरी दुनिया – सब पैसावाले, अरबपति, करोड़पति, राजा, पचास-पचास हजार की महीने (के) वेतनवाले सभी दुःखी प्राणी हैं, बेचारे ! क्योंकि सुख जो आत्मा में है, इसकी तो इसे खबर नहीं। ऐसे आत्मा को अन्दर पर्याय में दुःख है – ऐसा न माने (तो वह मिथ्या है) क्योंकि दुःख तो है। दुःख है, राग है, विकार है – यह भी जीव की पर्याय में सत्व अर्थात् पर्याय में होता है। वह कोई पर में नहीं होता। आहा...हा... ! ऐसा है।

अशुद्धनय को यहाँ हेय कहा है... है? ...अशुद्धता परद्रव्य के संयोग से होती है, यह ही अन्तर है। अशुद्धनय को यहाँ हेय कहा है क्योंकि अशुद्धनय का विषय संसार है... लो ! यह क्या कहा ? कि इसकी पर्याय में जो मलिनता दिखती है, वह संसार है। वह अशुद्धनय है, वह व्यवहार है और वह संसार है; इसलिए त्रिकाली को सत्य कहकर, उसको असत्य कहा है। परन्तु असत्य कहकर, जैसे खरगोश का सींग नहीं; उसी प्रकार मलिनता पर्याय में नहीं – ऐसा नहीं। आहा...हा... ! ऐसा है। कभी त्रिकाली को सत्य कहते हैं, फिर पर्याय को भी यहाँ सत्य कहा (है)। वस्तु का सत्व कहा ...सत्व ! मलिनता भी पर्याय का सत्व (है)। पर्याय इसकी है न ? इससे वस्तु का यह सत्व है। अशुद्धता परद्रव्य के संयोग से आती है, इतना अन्तर है। बाकी है तो विकार इसकी पर्याय में।

अशुद्धनय को यहाँ हेय कहा है क्योंकि अशुद्धनय का विषय संसार है और संसार में आत्मा क्लेश भोगता है। जब स्वयं परद्रव्य से भिन्न होता है, तब संसार छूटता है... आ...हा... हा... ! वह पुण्य-पाप के भाव की मलिनता मिटाये, तब संसार छूटता है और शुद्धता होती है। परन्तु इसकी पर्याय में (मलिनता) नहीं है – ऐसा माने तो मिटाना रहता नहीं और उसे स्वयं का त्रिकाल स्वभाव माने तो भी मिटाना रहता नहीं। दो न्याय ! पर्याय में नहीं, ऐसा माने तो मिटाना रहता नहीं और पर्याय (की) वह अशुद्धता द्रव्य में है – ऐसा माने तो (भी) मिटाना रहता नहीं। आ...हा...हा... ! यह तो न्याय का विषय है

भाई ! वीतराग का मार्ग तो न्यायाधीश है। न्याय से है। इसको ऐसा का ऐसा मान लेना (ऐसी) बात नहीं।

**मुमुक्षु :** अज्ञानी जीव यह निश्चित कर सकता है ?

**समाधान :** अज्ञानी निश्चित कर सकता (है)। बराबर मान सकता (है)। देख सकता है। जाने, जाने तो न! आहा...हा...!

**मुमुक्षु :** इस पाप में पड़े हुए हैं....?

**समाधान :** इसलिए कहते हैं पाप में पड़े और पुण्य में पड़े, दोनों समान हैं। यहाँ यह कहना है भाई ! पाप में पड़ा है – पूरे समय ही कमाना और पत्नी और लड़का और धूल और धमाल ! दो-पाँच-पच्चीस करोड़ रुपये हो जाए तो ऐसा हो जाता है मानों स्वयं बड़ा बादशाह हो गया। आहा...हा...! बापू! बादशाह तो वह अन्दर में विराजता है। चैतन्य परमेश्वर बादशाह है। 'बादशाह' इसमें से विकार को बाद करे तो 'शाह' अकेला रह जाता है। सूक्ष्म बात है भाई !

विकार इसमें है। विकार नहीं – ऐसा माने तो भी झूठ और विकार, त्रिकाल द्रव्य में माने तो भी झूठ है। त्रिकाल द्रव्य है – (वह) शुद्ध है (और) वर्तमान पर्याय, वह मलिन और अशुद्ध है; दोनों जीव का सत्व (है), जीव के सत्व में, जीव की सत्ता में होते हैं; यह पर की सत्ता में मलिनता है – ऐसा नहीं, ऐसा कहते हैं। कर्म के कारण मलिनता है – ऐसा नहीं। आ...हा...हा...!

...क्लेश भोगता है;... है न? अशुद्धनय को यहाँ हेय कहा है क्योंकि अशुद्धनय का विषय संसार है.... क्या कहते हैं? कि वस्तु जो त्रिकाल चैतन्यस्वरूप है, इसकी दृष्टि-अनुभव करने के लिए, पुण्य-पाप के भाव उसकी पर्याय में है, फिर भी उसको गौण करके, उसको लक्ष्य में नहीं लेने के लिए 'वह नहीं' – ऐसा कहा और शुद्धनय का विषय सत्य है – ऐसा कहने में आया है। आ...हा...हा...! एक शब्द के अन्तर से (बड़ा) अन्तर पड़ता है – ऐसा है, बापू! यह तो न्याय का विषय है। यह कोई कथा-वार्ता नहीं है। यह तो भागवत् कथा है, भागवत्... भगवत्! भगवन, भगवान आत्मा की कथा (है) प्रभु! आहा...हा...! नियमसार में कहा है कि यह भागवत कथा है। भगवान आत्मा की कथा



(है) यह !! आहा... ! परन्तु वह भगवान आत्मा होने पर भी, अनादि से उसकी पर्याय में यह मलिनता कर रहा है। पाप पूरे दिन ! और पाप छोड़कर कदाचित् पुण्य में आये, तो भी ये दोनों विकार हैं, दोनों संसार है। आ...हा...हा... ! है ? कहा न ! ....अशुद्धनय का विषय संसार है। और संसार में आत्मा क्लेश भोगता है;... आहा...हा... ! चाहे शुभभाव हो या अशुभभाव हो, (दोनों) अशुद्ध हैं और उससे वह दुःखी है। इस कारण उस दुःख के अभावरूप, आनन्दस्वरूप है, उसकी इसको खबर नहीं।

आनन्द का नाथ प्रभु है ! सच्चिदानन्द प्रभु ! परमेश्वर की जाति का ही स्वयं (है), उनकी जाति का है। यह परमेश्वर की जाति का स्वयं है। इसकी जाति का है परन्तु इसको पहचाने बिना-अनुभव बिना इसको अकेला दुःख ही हो रहा है। पुण्य और पाप के परिणाम दोनों दुःखरूप हैं। पूरे दिन पाप करता है और कमाना, भोग और विषय भोगना... कमाना और इसे महीने में 5-25 लाख रुपये मिलते हो (तो इसी में) फँस जाए। घाणी में जैसे तिल पिलता है तिल ! ऐसे ही यह पाप में पिलता है। और वह छोड़कर पुण्य में आये तो कहते हैं पुण्य अपना माने तो वहाँ पिलता है। है इसकी पर्याय में, फिर भी त्रिकाली में नहीं। आहा...हा... ! ऐसी बात है !

**मुमुक्षु :** वास्तविक रहस्य बताया है, प्रभु !

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वस्तु तो ऐसी है, बापू ! आहा...हा... ! बहुत आगे नहीं ले जाकर, इसमें है इसका अर्थ करते हैं। बहुत सूक्ष्मता। हों ! आगे नहीं ले जाते।

अब (कहते हैं) जब स्वयं परद्रव्य से भिन्न हो... (अर्थात्) भगवान आत्मा चैतन्यमूर्ति है, वह परद्रव्य से भिन्न हो अर्थात् मलिनता से भिन्न हो, तब संसार मिटे, तब क्लेश मिटे। इस प्रकार दुःख मिटाने के लिए शुद्धनय का विषय प्रधान है। (इसलिए उसे) मुख्य कहा। दुःख मिटाने (के लिए) आत्मा शुद्ध है, त्रिकाली है, उसमें विकार नहीं – ऐसा कहने में आया है। इस शुद्ध की दृष्टि और शुद्ध का अनुभव करने के लिए (ऐसा कहने में आया है)।

अशुद्धनय को असत्यार्थ कहने से ऐसा नहीं समझना कि आकाश के फूल की भाँति वह वस्तुधर्म सर्वथा है ही नहीं। यह क्या कहते हैं ? पर्याय में अशुद्धता नहीं,

मलिनता नहीं – ऐसा मानने से तो आकाश के फूल की भाँति वस्तु हो जाए। (परन्तु) ऐसा है नहीं। पर्याय में अशुद्धता है, यह मलिनता भोगता है। वहाँ आनन्द कहाँ है इसको? अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद कहाँ है? यह तो अकेला दुःख है! विषय का, भोग का, राग का, अरे! चाहे तो दया-दान-व्रत (का) परिणाम हो, वह भी राग है और राग है, वह दुःख है। परन्तु है दुःख! यह दुःखी है, दुःखी है, परन्तु यह दुःख इसकी दशा में है। इसके त्रिकाल स्वभाव में दुःख है नहीं; इसलिए दोनों बात है – ऐसा जानना चाहिए। आहा...हा...!

इस प्रकार दुःख मिटाने के लिए.... है? ....शुद्धनय का उपदेश प्रधान है। अशुद्धनय को असत्यार्थ कहने से ऐसा नहीं समझना कि आकाश के फूल की भाँति वह वस्तुधर्म सर्वथा है ही नहीं। ऐसा सर्वथा एकान्त समझने से मिथ्यात्व होता है। यह क्या कहा? वस्तु त्रिकाली है – सम्यग्दर्शन का विषय, धर्म की पहली सीढ़ी का विषय, वस्तुधर्म त्रिकाली शुद्ध, इसको यहाँ सत्य कहा है परन्तु इस एक को ही माने और पर्याय में मलिनता है, यह न माने तो मलिनता को छोड़कर निर्मलता (में) जाना, वह नहीं होता। वह मलिनता का नाश माने तो भी सर्वथा एकान्त है-मिथ्यात्व है। पर्याय में मलिनता है, यह नहीं माने तो भी मिथ्यात्व है और मलिनता से आत्मा में धर्म होता है – ऐसा माने तो भी मिथ्यात्व है। आहा...हा...!

ऐसा कठिन काम है। यह बात घर में चलती नहीं, दुकान में चलती नहीं। सुनने जाए वहाँ भी बाहर की बातें मिलती हैं। ...व्रत करो, और उपवास करो, और पूजा करो, मन्दिर बनाओ और भक्ति करो। यह चीज कहीं सुनने को मिलती नहीं तो करे कब बेचारा? आहा...! अनन्त काल से भटका प्रभु! एक सेकेण्ड भी इसे आत्मा के आनन्द के स्वाद की खबर नहीं।

इसलिए स्याद्वाद की शरण लेकर शुद्धनय का अवलम्बन करना चाहिए। अशुद्धता है, इसकी दशा में मलिनता है, इसका लक्ष्य रखकर; और इसको छोड़कर शुद्ध त्रिकाल का विषय लेना (ग्रहण) करना। आत्मा की त्रिकाली पवित्रता को प्रगटाना। अशुद्धता है, इसका (ज्ञान) करके, इसका लक्ष्य छोड़कर शुद्धता को पकड़ना। अशुद्धता ही नहीं तो उसको छोड़ना रहता नहीं। है? ऐसा सर्वथा एकान्त समझने से मिथ्यात्व

होता है;... आहा...! ...इसलिए स्याद्वाद की शरण लेकर शुद्धनय का आलम्बन लेना चाहिए। अशुद्धता है, मलिनता है, यह लक्ष्य में रखकर और उसको छोड़कर स्वरूप में जाना – ऐसे शरण लेना। अशुद्धता ही नहीं है – ऐसा माने तो यह अशुद्धता छूटे नहीं। वह अशुद्धता स्वरूप में है – ऐसा माने तो भी अशुद्धता छूटती नहीं; इसलिए स्वरूप में अशुद्धता नहीं, पर्याय में है, इसका लक्ष्य रखकर और शुद्ध की शरण लेना। समझ में आया। भाषा तो सादी है प्रभु! परन्तु भाव तो जो हो, वही होता है। चाहे जैसे भाव को हल्का कर दे (तो भी) हल्का किस प्रकार हो? इसकी स्थिति की मर्यादा हो, इस प्रमाण रहे न! आहा...हा...!

**मुमुक्षु :** धर्म करने के लिए क्या करना चाहिए?

**समाधान :** यह धर्म करने (के लिए) आत्मा शुद्ध है, उसके ऊपर दृष्टि करनी चाहिए। परन्तु अशुद्धता है, वह लक्ष्य में रखना चाहिए। पर्याय में अशुद्धता है। समझ में आया। पर्याय में अशुद्धता न हो तो अशुद्धता को छोड़कर, शुद्धता को प्रगट करना रहता नहीं। अतः पर्याय में / अवस्था में / हालत में; जैसे स्फटिक में लाल-पीले फूल के कारण लाल-पीली झाँई दिखती है। (वह) इसकी योग्यता से दिखती है। इसमें है, स्फटिक में है ये। ऐसे ही प्रभु चैतन्य स्फटिक की तरह शुद्ध होने पर भी, कर्म के निमित्त के संग में जुड़ने से पुण्य और पाप के मलिनभाव उसमें दिखायी देते हैं। यह अशुद्धता है।

(इसका विशेष कहेंगे)।